

भारतीय ज्ञान परंपरा में 'लोक' की अवधारणा : लोकतंत्र के प्राचीन भारतीय स्वरूप का विश्लेषण

सोनम अग्रवाल¹ एवं मनप्रीत कौर²

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ¹

शोधार्थी, इतिहास विभाग, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ²

DOI: <https://doi.org/10.64880/theresearchdialogue.v5i3.09>

ARTICLE DETAILS

Research Paper

Received: 10-09-2026

Accepted: 05-10-2026

Published: 16-10-2026

Corresponding Author:

सोनम अग्रवाल

मूल शब्द— लोक—परंपरा,
प्राचीन भारतीय लोकतंत्र,
सभा—समिति संरचना,
लोक—कल्याण आधारित
राजधर्म, भारतीय राजनीतिक
दर्शन

OPEN  ACCESS

सारांश

यह शोध—पत्र भारतीय ज्ञान परंपरा में निहित 'लोक' की अवधारणा और उसके लोकतांत्रिक स्वरूप का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। भारतीय चिंतन में 'लोक' केवल जनता का समूह नहीं, बल्कि सामूहिक जीवन, सामाजिक न्याय, नैतिकता, कर्तव्य और लोक—कल्याण की व्यापक धारणा है। वेद उपनिषद, स्मृति—ग्रंथ, महाकाव्य, बौद्ध संघ तथा गणराज्य जैसी संस्थाएँ इस बात को सिद्ध करती हैं कि भारत में लोकतांत्रिक परंपरा अत्यंत प्राचीन और बहुआयामी रही है। वेदों में वर्णित सभा—समिति जैसी संस्थाएँ प्राचीन भारत में जनमत, विमर्श और सामूहिक निर्णय के प्रमुख केंद्र थे। इन संस्थाओं में समानता, सहमति और सहभागिता को सर्वोच्च महत्व दिया जाता था, जिससे यह स्पष्ट होता है कि भारत में लोकतंत्र केवल राजनीतिक व्यवस्था नहीं, बल्कि एक जीवन—दर्शन था। "लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु" जैसे वैदिक मंत्र यह प्रमाणित करते हैं कि भारतीय शासन—व्यवस्था का मूल उद्देश्य लोकहित और लोक—कल्याण था। महाभारत, अर्थशास्त्र और धर्मसूत्रों में राजा को लोक—सेवक, लोक—पालक और जनकल्याण का संरक्षक बताया गया है। भारतीय राजधर्म में सत्ता को नैतिकता, धर्म और लोकहित के अधीन रखा गया, जो पाश्चात्य लोकतंत्र के अधिकार—केंद्रित मॉडल से भिन्न है। प्राचीन भारतीय गणराज्य और बौद्ध संघों में निर्णय प्रक्रिया विमर्श, सहयोग और बहुसंख्यक पर आधारित थी, जो आधुनिक लोकतंत्र की पूर्वपीठिका साबित होती है। पाश्चात्य लोकतंत्र की तुलना में भारतीय लोकतंत्र अधिक मानवीय, नैतिक और समावेशी था, जिसमें प्रकृति, समाज और सम्पूर्ण लोक के कल्याण को शासन का केंद्र माना गया।

प्रस्तावना

भारतीय ज्ञान परंपरा विश्व की सबसे प्राचीन और समृद्ध दार्शनिक धरोहरों में से एक मानी जाती है। इस परंपरा में 'लोक' की अवधारणा केवल सामाजिक संरचना तक सीमित नहीं है बल्कि यह शासन, नैतिक मूल्यों, धर्म और सामूहिक चेतना का मूल आधार है। भारतीय चिंतन में राज्य का लक्ष्य सदैव 'लोक—कल्याण' माना गया है। यही कारण है कि भारतीय लोकतांत्रिक विचार पश्चिम की अपेक्षा कहीं अधिक पुराना, व्यापक और बहुआयामी है। जहाँ पाश्चात्य लोकतंत्र

मूलतः आधुनिक युग की उपज है, वहीं भारतीय लोकतंत्र की जड़ें वेदों, उपनिषदों, स्मृतियों, बौद्ध संघों और गणराज्यों तक फैली हुई हैं।

भारत एक लोकतांत्रिक देश है यदि विश्व पटल पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि विभिन्न राज्यों में राजतंत्र, श्रेणी तंत्र, अधिनायक तंत्र और लोकतंत्र आदि शासन प्रणालियों प्रचलित रहीं हैं यद्यपि ऐतिहासिक दृष्टि से अवलोकन करें तो भारत में लोकतांत्रिक शासन प्रणाली का आरंभ वैदिक काल से ही हो गया था।

प्राचीन भारत में शुद्ध लोकतांत्रिक व्यवस्था विद्यमान थी इसके साक्ष्य हमें प्राचीन साहित्य ग्रंथ आदि में देखने को मिलते हैं।

यजुर्वेद में वर्णित है—

लोकं पूण छिद्रं पूण

अर्थात् लोक कल्याण को सर्वप्रथम रखो और जो लोकहित में बाधक तत्व हैं उनको दूर करो इससे ज्ञात होता है कि प्राचीन भारत में लोकहित समाज का मुख्य लक्ष्य है। जबकि समकालीन जगत में प्रचलित लोकतंत्र की अवधारणा एवं लोकतंत्र के प्रतिमानों का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि लोकतंत्र पश्चिमी अवधारणा है। पश्चिमी साहित्य के आधार पर डेमोक्रेसी लोकतंत्र का पर्याय है डेमोक्रेसी शब्द की व्युत्पत्ति ग्रीक मूल के 'डेमोस' और 'क्रेटोज' से हुई है जिससे तात्पर्य है— जनता का शासन।

अब्राहम लिंकन के अनुसार "लोकतंत्र जनता का शासन है जो जनता के द्वारा जनता के लिए चलाया जाता है।"

डाइसी ने अपनी प्रसिद्ध कृति "लॉ एंड ऑपिनियन इन इंग्लैंड ड्यूरिंग द नाइंटीथ सेंचुरी" 1905 में लोकतंत्र की ऐसी प्रणाली माना है जिसमें विधि निर्माण बहुमत से आधारित होता है। उसके अनुसार लोकतंत्र में ऐसे कानून लागू करना एक नादानी होगी जो जनसाधारण को पसंद न हो।

जेम्स ब्राइस में अपनी कृतियों "द अमेरिकन कॉमनवेल्थ" (1893) और "मॉडर्न डेमोक्रेसी" (1921) के अंतर्गत लोकतंत्र को मुख्यतः एक शासन प्रणाली के रूप में प्रस्तुत किया है उनके अनुसार "लोकतंत्र जनसाधारण का शासन है जिसमें वह वोटो के माध्यम से अपनी प्रभु सत्ता संपन्न इच्छा को व्यक्त करते हैं।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि पश्चिमी साहित्य ने लोकतंत्र शब्द का अभिप्राय जन सामान्य तक सीमित कर दिया है जबकि भारतीय परंपरागत ग्रंथों में लोकतंत्र का अर्थ मात्र जन सामान्य का शासन नहीं है अपितु प्राणी मात्र का कल्याण लोकतंत्र में निहित है।

लोगाक्षी स्मृति में वर्णित श्लोक है—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे संतु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेद्॥

अर्थात् सब सुखी हों, सभी निरोग रहें, सभी भद्र देखें तथा किसी को दुःख का भागी ना बनना पड़े।

भारतीय ज्ञान परंपरा में 'लोक' की दार्शनिक अवधारणा

भारतीय ग्रंथों में 'लोक' का अर्थ केवल जनता या जनसमूह नहीं है, बल्कि यह सामूहिक जीवन, सामाजिक न्याय, नैतिक मूल्यों और कल्याणकारी विचारधारा का समावेशी रूप है। 'लोक' एक ऐसी अवधारणा है जिसमें व्यक्ति से बड़ा समुदाय माना गया है और समुदाय से बड़ा 'लोकहित'। इस कारण भारतीय परंपरा में शासन का आधार सदैव व्यक्तिगत लाभ नहीं, बल्कि लोकहित, लोक-समृद्धि और लोक-कल्याण रहा है। उपनिषदों में 'लोक' को ब्रह्मांडीय व्यवस्था का अंग माना गया है, जहाँ प्रत्येक व्यक्तित्व की भूमिका लोक-मंगल से जुड़ी है।

वेदों में कहा गया— “लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु”— यह वाक्य भारतीय लोकतांत्रिक दृष्टि की सर्वोच्च अभिव्यक्ति है, जहाँ शासन का उद्देश्य जनता की खुशी, सुरक्षा और समृद्धि को सर्वोपरि मानना है। इस दृष्टि से देखा जाए तो भारतीय लोकतंत्र की अवधारणा व्यक्तिगत अधिकारों पर नहीं, बल्कि सामूहिक कर्तव्य और सामाजिक समरसता पर आधारित है। ‘महाभारत के शांति पर्व’ में उद्धृत है—

लोकरञ्जन राज्ञां धर्म सनातनः।

अर्थात् प्रजा को सुखी करना, प्रसन्न रखना राजा का सर्वप्रथम कर्तव्य है।

यजुर्वेद में जनराज्य का महत्व वर्णन करते हुए कहा गया है कि इसमें राज्य के शत्रु रहने नहीं पाते। इसमें जनता में आत्म गौरव रहता है, अतः महान क्षात्र शक्ति का विकास होता है। इसमें जनता ज्येष्ठता और श्रेष्ठता की अनुभूति करती है। इसके लिए कहा गया है कि

‘महते क्षत्राय, महते ज्यैष्ठाय’ और ‘इन्द्रस्य इन्द्रियाय’

अर्थात् इससे जनता में दिव्य शक्ति का संचार होता है इस पद्धति में जनता अपना गौरव समझती थी। जनता को अधिक सुविधाएं प्राप्त होती थी जनता के हितों का विशेष ध्यान रखा जाता था इसमें जनता का शोषण नहीं होता था इसमें जनता के प्रतिनिधि राज्य शासन करते थे और राजा प्रजा के द्वारा निर्वाचित होता था यह कहना गलत नहीं होगा कि लोकतंत्र का सिद्धांत वेदों से उत्पन्न हुआ है

वेदों में ‘लोक’ और लोकतांत्रिक तत्वों का उद्भव—

वेदकालीन साहित्य में स्पष्ट रूप से ‘सभा’ और ‘समिति’ नामक संस्थाओं का उल्लेख मिलता है, जो प्राचीन भारत में जनभागीदारी और निर्णय प्रक्रिया के केंद्र थे। सभा वह स्थान थी जहाँ जनता अपनी राय व्यक्त करती थी, और समिति वह संस्था थी जहाँ सामूहिक निर्णय लिए जाते थे। यह व्यवस्था किसी भी आधुनिक लोकतांत्रिक तंत्र से कम नहीं थी। इन संस्थाओं में प्रत्येक सदस्य समान अधिकार रखता था, बहस होती थी, विचार—विमर्श होता था और अंतिम निर्णय सहमति के आधार पर लिया जाता था। यजुर्वेद में लोक—कल्याण को सर्वोच्च लक्ष्य माना गया है, जिससे स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय शासन जनता की आवश्यकताओं और इच्छाओं के अनुसार संचालित होता था। यह प्रणाली इस बात की पुष्टि करती है कि भारत में लोकतंत्र केवल एक राजनीतिक ढाँचा नहीं बल्कि जीवन—पद्धति थी।

बौधायन धर्मसूत्र, शुक्र नीति और याज्ञवल्क्य स्मृति में वर्णित है राजा वस्तुतः प्रजा का सेवक है। प्रजा अपनी आय का छठा भाग जो कर के रूप में प्रदान करती है वह राजा का वेतन है।

बौधायन धर्मसूत्र में वर्णित है—

षड्भागे राजा रक्षेत् प्रजाम्।

आधुनिक संसदीय लोकतंत्र की भांति कुछ महत्वपूर्ण तथ्य जैसे बहुमत द्वारा लिया गया निर्णय भी उसे समय प्रचलित थे वैदिक काल के पश्चात छोटे—छोटे गणराज्यों का उल्लेख मिलता है जिनमें लोक प्रशासन से संबंधित निर्णय लेने की प्रक्रिया में सब एक साथ भाग लेते थे। प्राचीन भारत में गणतंत्र को एक लोकतांत्रिक प्रणाली के रूप में परिभाषित किया गया था ब्राह्मण ग्रंथों, महाभारत के शिलालेखों, समकालीन इतिहासकारों एवं मनुस्मृति में विभिन्न साक्ष्य मिलते हैं। जिसके परिणाम स्वरूप यह ज्ञात होता है कि भारतीय संस्कृति में अति प्राचीन समय में लोकतंत्र की अवधारणा विद्यमान थी।

पिछले कई वर्षों में विचार विमर्श का मुख्य आधार यही है कि लोकतंत्र का अभ्युदय पश्चिम विशेषतः यूनान में हुआ है यह केवल हमने अध्ययन में ही सम्मिलित नहीं किया अपितु यह अटल सत्य मान लिया परिणाम स्वरूप हम अपनी संस्कृति और विलक्षणता को विस्तृत करते चले गए। अतीत में भारत न केवल स्वयं प्रकाशित रहा अपितु संपूर्ण विश्व को अपनी

संस्कृति, अपने ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित किया। विभिन्न ग्रंथों में विभिन्न स्थान पर विद्यमान है कि लोकतंत्र के कई रूप भारत में देखने को मिलते थे कहीं पर शास्त्रीय लोकतंत्र की अवधारणा है जहां प्रजा आपस में सहमति बनाकर राजा का चुनाव करती है कहीं जनतंत्रात्मक लोकतंत्र है जहाँ प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष विधि से शासक का चुनाव होता है, कहीं प्रतिनिध्यात्मक लोकतंत्र है जहाँ प्रतिनिधि के द्वारा जनता राजा को चुनाव करती है तो कहीं प्रत्यक्ष रूप से जनता भागीदारी व्यक्त करती है कहीं परिचर्चात्मक रूप से लोकतंत्र विद्यमान है कहीं कुछ समूह लोकतंत्र की प्रक्रिया में भाग लेते हैं।

प्राचीन भारतीय ग्रंथों में राजा का निर्वाचन, राजा के वापसी का अधिकार, राजा की अस्वीकृति का अधिकार, राजा का पुनः निर्वाचन, समिति, सभा, संसद, जनहित याचिका, कर्तव्य के रूप में सम्मिलित मानवाधिकार यह भारतीय लोकतंत्र को परिलक्षित करते हैं। प्राचीन भारत में लोककल्याणकारी राज्य की संकल्पना रही है इसलिए राजा को लोक रंजक कहा जाता था।

भारतीय परंपरागत ग्रंथों का अवलोकन करने के पश्चात यह ज्ञात होता है कि भारतीय संस्कृति लोकतंत्र की जननी है यद्यपि समकालीन जगत में अवधारणा रही है कि लोकतंत्र का आविर्भाव पश्चिम की देन है जिसके परिणामस्वरूप लोकतंत्र के विभिन्न प्रतिमानों का उदय हुआ है।

मनुस्मृति –

स राजा पुरुषो दण्डः स नेता शासिता च सः।

चतुर्णामाश्रमाणां च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृः॥

अर्थात् जो दंड है वहीं पुरुष राजा, वही न्याय का प्रचार करता ,और सब का शासन करता वही चार वर्णों और चार आश्रमों के धर्म का प्रतिभू अर्थात् शासक है।

प्रत्यहं लोकदृष्टैश्च शास्त्रदृष्टैश्च हेतुभिः।

जो जो नियम राजा और प्रजा के सुख कारक और धर्म युक्त समझे उन नियमों को पूर्ण विद्वानों की राज्यसभा बांधा करें।

वेदों में 'लोक' और लोकतांत्रिक तत्वों का उद्भव–

वेदकालीन साहित्य में स्पष्ट रूप से 'सभा' और 'समिति' नामक संस्थाओं का उल्लेख मिलता है, जो प्राचीन भारत में जनभागीदारी और निर्णय प्रक्रिया के केंद्र थे। सभा वह स्थान थी जहाँ जनता अपनी राय व्यक्त करती थी, और समिति वह संस्था थी जहाँ सामूहिक निर्णय लिए जाते थे। यह व्यवस्था किसी भी आधुनिक लोकतांत्रिक तंत्र से कम नहीं थी। इन संस्थाओं में प्रत्येक सदस्य समान अधिकार रखता था, बहस होती थी, विचार-विमर्श होता था और अंतिम निर्णय सहमति के आधार पर लिया जाता था। यजुर्वेद में लोक-कल्याण को सर्वोच्च लक्ष्य माना गया है, जिससे स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय शासन जनता की आवश्यकताओं और इच्छाओं के अनुसार संचालित होता था। यह प्रणाली इस बात की पुष्टि करती है कि भारत में लोकतंत्र केवल एक राजनीतिक ढाँचा नहीं बल्कि जीवन-पद्धति थी। भारतीय परंपरागत संस्कृति में राष्ट्र के स्वामी का निर्वाचन लोक करता था इस बात का संकेत ऋग्वेद में मिलता है–

'सर्वाः विशः त्वां वाञ्छन्तु'

अर्थात् सभी लोक तुम्हें चाहता है।

'त्रीणी राजाना विदथे पुरुणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि।'

ईश्वर उपदेश करता है कि राजा और प्रजा के पुरुष मिलकर सुख प्राप्ति और विज्ञानवृद्धिकारक राजा और प्रजा के संबंधरूप व्यवहार में तीन सभा अर्थात् विद्यार्यसभा, धर्मार्यसभा और राजार्यसभा नियत करके बहुत प्रकार के समग्र प्रजासंबंधी मनुष्यादि प्राणियों को सब ओर से विद्या, स्वातंत्र्य, धर्म, सुशिक्षा और धनादि से अलंकृत करें।

ऋग्वेद में वर्णित है— 'जिन्वतं विशः'

अर्थात् प्रजा को शक्ति दो, स्फूर्ति दो।

राष्ट्रमेव विश्याहन्ति तस्माद्राष्ट्री विशं घातुकः।

विशमेव राष्ट्रायाद्यां तस्माद्राष्ट्री विशमति न पुष्टं पशुं मन्यत।

अर्थात् जो प्रजा से स्वतंत्र स्वाधीन राज वर्ग रहे तो राजपुरुष राज्य में प्रवेश करके प्रजा का नाश किया करें इसलिए अकेला राजा स्वाधीन व उन्मत्त होकर प्रजा का नाशक होता है वह राजा प्रजा को पीड़ा देता है। इसलिए किसी एक को राज्य में स्वाधीन ना करना चाहिए।

भारतीय लोकतंत्र और पाश्चात्य लोकतंत्र : एक गहन तुलना

भारतीय लोकतंत्र की तुलना में पाश्चात्य लोकतंत्र कई मायनों में भिन्न है। भारतीय लोकतंत्र और पाश्चात्य लोकतंत्र के बीच का अंतर केवल राजनीतिक संरचना का नहीं, बल्कि दो भिन्न सभ्यताओं के मूलभूत दृष्टिकोणों का अंतर है। भारतीय लोकतंत्र की जड़ें प्राचीन 'लोक' अवधारणा, सामूहिक चेतना और नैतिक कर्तव्यों में निहित हैं, जहाँ समाज को एक परिवार और राज्य को उस परिवार का संरक्षक माना गया। इसके विपरीत पाश्चात्य लोकतंत्र का उद्भव मुख्यतः व्यक्तिवाद, अधिकार—केंद्रित चिंतन, पूँजीवादी विकास और राजनीतिक क्रांतियों से हुआ।

जहाँ पाश्चात्य लोकतंत्र में बहुमत निर्णय को सर्वोपरि माना जाता है, वहीं भारतीय लोकतंत्र मूलतः सहमति—आधारित एवं भारतीय लोकतंत्र का सार "सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय" की भावना में निहित है। प्राचीन सभा, समिति, गणराज्य और पंचायतों में निर्णय लेते समय यह प्रयत्न किया जाता था कि सभी मतों का सम्मान हो, किसी वर्ग का दमन न हो और समाधान समाज की सामूहिक भलाई को ध्यान में रखकर निकाला जाए। यह लोकतंत्र को मात्र सत्ता—संघर्ष का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक समरसता का मार्ग बनाता था।

भारतीय लोकतंत्र में नैतिकता, कर्तव्य और जनहित अत्यंत प्रमुख तत्व थे। मनुस्मृति, महाभारत और अर्थशास्त्र जैसे ग्रंथों में शासक को लोकसेवक बताया गया है, न कि सत्ताधारी। दूसरी ओर पाश्चात्य लोकतंत्र की नींव सत्ता परिवर्तन, क्रांतियों, और प्रतिस्पर्धी पार्टियों के संघर्ष पर आधारित रही।

भारतीय लोकतांत्रिक मॉडल समाज से निकला—जहाँ संस्कृति, परंपरा और लोकमंगल प्रमुख थे। लेकिन पाश्चात्य मॉडल राजनीति से निकला—जहाँ संस्थाएँ, कानून और अधिकार सबसे महत्वपूर्ण रहे। इसलिए भारतीय लोकतंत्र अपेक्षाकृत अधिक मानवीय, संतुलित, टिकाऊ और व्यापक सामाजिक कल्याण को सुनिश्चित करने वाला रहा है। यह अंतर भारतीय लोकतंत्र को विशिष्ट बनाता है और दर्शाता है कि भारत का लोकतांत्रिक विचार केवल शासन प्रणाली नहीं, बल्कि एक गहरी सांस्कृतिक परंपरा है जो हजारों वर्षों से समाज में प्रवाहित होती आ रही है।

निष्कर्ष

भारतीय ज्ञान परंपरा का गहन अध्ययन यह प्रमाणित करता है कि 'लोक' की अवधारणा भारतीय लोकतंत्र की आत्मा है। प्राचीन भारत में लोकतांत्रिक मूल्य न केवल राजनीतिक संस्थाओं में, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक जीवन में भी गहराई से अंकित थे। सभा—समिति, गणराज्य, बौद्ध संघ, पंचायत— ये सभी संरचनाएँ सिद्ध करती हैं कि लोकतंत्र का उद्गम वास्तव में भारत में ही हुआ। भारत का लोकतंत्र लोकहित, लोकभागीदारी और लोक—कल्याण पर आधारित एक समावेशी और नैतिक लोकतंत्र था। जिसमें सिर्फ जनता का, जनता के लिए शासन को ही लोकतंत्र कि संज्ञा नहीं दी जाती थी अपितु प्राणी मात्र के कल्याण को जिसमें मनुष्य, पशु—पक्षी सम्पूर्ण लोक सम्मिलित था।

अतः भारतीय ज्ञान परंपरा का अध्ययन यह प्रमाणित करता है कि लोकतंत्र का वास्तविक उद्भव और प्रारंभ भारत में ही हुआ, और यही उसे "लोकतंत्र की जननी" बनाता है।

संदर्भ सूची

1. हेल्ड, डी. 1987 : मॉडल्स ऑफ़ डेमोक्रेसी. कैम्ब्रिज यूके पोलिटी प्रेस।
2. मैक्फर्सन, सी. बी. 1973 : डेमोक्रेटिक थिअरी एसेज इन रिट्राइवल. आक्सफोर्ड : क्लेरेंडन प्रेस।
3. मैक्फर्सन, सी. बी. 1977 : द लाइफ एण्ड टाइम्स ऑफ़ लिबरल डेमोक्रेसी, आक्सफोर्ड : आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
4. बार्बर, बी. आर. 1984 : स्ट्रॉंग डेमोक्रेसी : पार्टिसिपेट्री पॉलिटिक्स फॉर ए न्यू एज. बार्कले: यूनिवर्सिटी ऑफ़ कैलिफोर्निया प्रेस।
5. डहल, आर. 1956 : अ प्रीफेस ऑफ़ डेमोक्रेटिक थिअरी, शिकागो : यूनिवर्सिटी ऑफ़ शिकागो प्रेस।
6. एलस्टर, जे. 1998 : डेलीब्रेटिव डेमोक्रेसी, कैम्ब्रिज : कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
7. रेजाई एम. 1967 : डेमोक्रेसी : द कंटेंपरेरी थिअरीज, न्यूयॉर्क एथर्टन प्रेस।
8. ब्राइस, जे. 1921 : मॉडर्न डेमोक्रेसीज न्यूयॉर्क : मैक्मिलन।
9. लिज़फर्ट, ए. 1999 : पैटर्न्स ऑफ़ डेमोक्रेसीज, येल यूनिवर्सिटी प्रेस।
10. रिंगेन, एस. 2007 : व्हाट डेमोक्रेसी इज़ फॉर, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।
11. शर्मा, पवन कुमार, 2021 : समकालीन राजनीति में प्रयुक्त शब्दावली के प्राचीन भारतीय संदर्भ।
12. सरस्वती, दयानंद, 2016 : सत्यार्थप्रकाश, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली।
13. प्रसाद, बेनी, 1928 : द स्टेट इन अंसिएंट इंडिया, इलाहाबाद द इंडियन प्रेस।
14. द्विवेदी, कपिल देव, 2009 : वेदों में राजनीति शास्त्र, विश्व भारती अनुसंधान परिषद, ज्ञानपुर (भदोही)।
15. जायसवाल, काशी प्रसाद, 2016 : हिंदू राज्य तंत्र, संपूर्ण प्रथम तथा द्वितीय खंड, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, चतुर्थ संस्करण।

Cite the Article:

अग्रवाल, सोनम, कौर, मनप्रीत. (2026). भारतीय ज्ञान परंपरा में 'लोक' की अवधारणा : लोकतंत्र के प्राचीन भारतीय स्वरूप का विश्लेषण. The Research Dialogue, An Online Peer Reviewed / Refereed Journal, 5(3) 83-88, ISSN: 2583-438X (Online), Volume 05, Issue 03, October-2026., DOI: - <https://doi.org/10.64880/theresearchdialogue.v5i3.09>

Disclaimer: The views, opinions, interpretations, analyses, conclusions, recommendations, and statements expressed in this research article are solely those of the author(s) and do not necessarily represent the views, policies, or positions of the Publisher, Chief Editor, Editors, Editorial Board, Reviewers, or their affiliated institutions. The author(s) bear full responsibility for the originality, accuracy, authenticity, and integrity of the manuscript and for ensuring compliance with applicable academic and ethical standards, including those relating to plagiarism, AI-generated or AI-assisted content, copyright infringement, data fabrication or falsification, and other forms of research or academic misconduct.